UGC-CARE Journal ISSN 0972-1002

श्रमण
ŚRAMAṆA

A Quarterly Refereed Research Journal of Jainology

Vol. LXXIV No. I Janauary-March, 2022

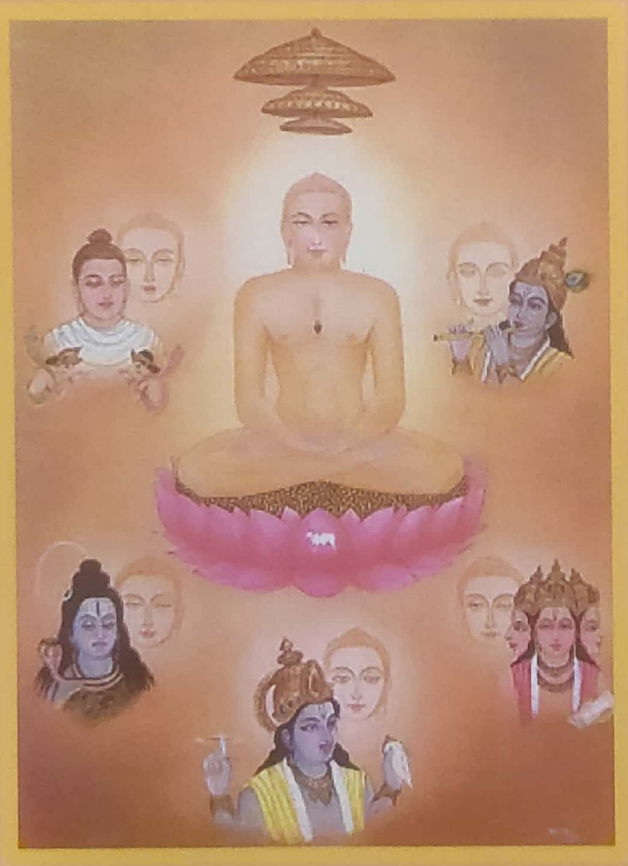

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्।
धाताऽसि धीर! शिवमार्ग-विधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि।।

भक्तामरस्तोत्र-25

Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi
Established : 1937

Scanned with OKEN Scanner

UGC-CARE Journal

ISSN 0972-1002

श्रमण

ŚRAMAṆA

(Since 1949)

A Quarterly Refereed Research Journal of Jainology

Vol. LXXIV No. I January-March, 2022

Editor

Dr. Shriprakash Pandey

Associate Editors

Dr. Om Prakash Singh Dr. Sanjay Kumar Singh

Parshwanath Vidyapeeth, Varanasi

(Established: 1937)

(Recognized by B. H. U.as an External Research Centre)

Address:

I T I Road, P.O., B. H. U , Varanasi 221005

Email: pvpvaranasi@gmail.com

Website: www.pv-edu.org

Phone: 0542-2575890

Mob: 9936179817

Scanned with OKEN Scanner

Contents

१. चरितनायक प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी म.सा. 1-8
डॉ. सागरमल जैन एवं डॉ. विजय कुमार

२. तमिल साहित्य के संवर्द्धन में जैनों का योगदान : एक विहंगावलोकन 9-22
डॉ. दिलीप धींग

३. तिलोयपण्णत्ति में अंकित नाट्याभिनय विषयक प्रसंगों की सैद्धान्तिक मीमांसा 23-34
डॉ. सुमत कुमार जैन

४. पंडित गोपालदास बरैया कृत 'सुशीला' उपन्यास में स्त्री-शिक्षा 35-41
डॉ. अनामिका जैन

5. अमोघवर्ष प्रथम कालीन जिनसेन एवं उनकी रचनाएँ 42-48
श्री वियोग यादव

6. Jaina Perception of 'Sacred' and reception in the Texts: Ācārāṅga Sūtra and Kalpasūtra 49-63
Yashvender Dhaka

7. Compassion in Ācārya Bhikṣu's Prism 64-82
Dr. Samani Shashi Prajna

8. Evolution of Sthānakavāsī and Terāpantha Sect 83-95
Dr. Kamini Gogri

विद्यापीठ के प्रांगण में 96-97
जैन जगत् 98-100
Our New Publication 101-102
अतीत के झरोखे में

Scanned with OKEN Scanner

Our Contributors

1. **Dr. Sagarmal Jain & Dr. Vijay Kumar**
   Former Director, Prachya Vidyapeeth, Shajapur & Assistant Professor, Department of Philosophy, L. S. College, B.R.A. University, Mujaffarpur (Bihar)
2. **Dr. Dilip Dhing**
   Director, International Research Center of Prakrit Studies, 7- Ayya Mudali Street, Sahukarpet, Chennai- 600001
3. **Dr. Sumat Kumar Jain**
   Assistant Professor, Department of Jainism & Prakrit, Mohanlal Sukhadiya University, Udaipur (Rajasthan) -313001
4. **Dr. Anamika Jain**
   Assistant Professor, Department of Hindi, Jain Kanya Pathshala P. G. College, Mujffarnagar (U. P.)
5. **Mr. Viyog Yadav**
   Research Scholar, Department of AIHC & Archeology, BHU, Varanasi.
6. **Yashvender Dhaka**
   Assistant Professor, Department of History, Vardhaman P.G. College, Najibabad Road, Bijnor-246701 (U.P.)
7. **Dr. Samani Shashi Prajna**
   Associate Professor, Department of Jaina Philosophy & Comparative Religion, Jain Vishva Bharati, Ladnun (Rajasthan).
8. **Dr. Kamini Gogri**
   Former Lecturer, Department of Philosophy, Mumbai University (Maharashtra)

Scanned with OKEN Scanner

'तिलोयपण्णत्ति' में अंकित नाट्याभिनय विषयक प्रसंगों की सैद्धान्तिक मीमांसा

-डॉ. सुमत कुमार जैन

आचार्य यतिवृषभ प्रणीत तिलोयपण्णत्ति शौरसेनी भाषा में रचित एक प्राचीन ग्रन्थ है। तिलोयपण्णत्ति का जैसा नामकरण किया गया है, वैसा ही इसमें वर्णन है अर्थात् तिलोय; 'त्रिलोक' तीन लोकों से सम्बन्धित; 'प्रज्ञप्ति' ज्ञान है। तीनों लोकों का विस्तार से निरूपण करने वाला यह ८००० श्लोकप्रमाण विशालकाय ग्रन्थ है।[1] इसमें कुल ५७७५ गाथाएँ हैं, जिनके ९ मुख्य अधिकार और १८० अवान्तर अधिकार हैं। विद्वानों ने आचार्य यतिवृषभ का समय १७६ ई. अर्थात् द्वितीय शताब्दी निश्चित किया है।

तिलोयपण्णत्ति का मुख्य विषय यद्यपि विश्व-रचना; लोकस्वरूप है तथापि प्रसंगानुसार धर्म और संस्कृति को उजागर करने वाले अनेक विषयों का प्रतिपादन भी किया गया है अर्थात् जैन सिद्धांत, पुराण, भारतीय इतिहास, सांस्कृतिक तथ्यों का वर्णन भी इसमें पाया जाता है।

वस्तुत: कोई भी साहित्य तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक आदि परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है। तिलोयपण्णत्ति भी ऐसा ही एक आदर्श ग्रंथ है। इसमें सांस्कृतिक तत्त्वों का वर्णन प्रसंगानुसार उपलब्ध होता हैं। सांस्कृतिक तत्त्वों के अन्तर्गत सामाजिक-व्यवस्था, आर्थिकजीवन, भौगोलिकवर्णन, वस्त्र-आभूषण, ललितकला एवं शिल्प, चित्रकला, वास्तुकला आदि को लिया जाता है।

'नाटक' ललितकला का एक अंग माना जाता है। यह मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम है। मनुष्य मनोरंजन दो अवसरों पर करता है- प्रथम तो धर्मिक उत्सवों, पर्वों या कार्यों के समय और दूसरा सांसारिक अवसरों में अर्थात् क्रमश: पूजा-भक्ति, स्तुति या किसी महापुरुष के चरित्र का गुणगान करते हुए एवं विवाह, जन्मदिन आदि अवसरों पर मनोरंजन करता है। तिलोयपण्णत्ति में अधिकांशत: मनोरंजन धर्मिक अवसरों पर ही देवता और मनुष्यों द्वारा किया गया उपलब्ध होता है।[2] इनके मनोरंजन के साधन के रूप में संगीत, नृत्य, वाद्य और नाटक मुख्यरूप से वर्णित हैं। मेरा प्रतिपाद्य विषय भी तिलोयपण्णत्ति में अंकित नाट्याभिनय विषयक प्रसंगों की सैद्धांतिक मीमांसा है।

Scanned with OKEN Scanner

नाट्यविधि-विधान का प्रतिपादन करने वाला भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र है, इसे पंचमवेद के रूप में भी माना गया है।[३] काव्य साहित्य-सृजन की दो प्रमुख विधाएं हैं- श्रव्य और दृश्य। इस परम्परा में नाटक को दृश्यकाव्य विधा के रूप में माना गया है। काव्य की दृश्यकाव्य विधा को श्रव्यकाव्य की अपेक्षा अधिक महत्व प्राप्त है, उसका कारण दृश्यकाव्य का रंगकर्म से सम्बन्धित होना है। रंगकर्म के माध्यम से नाट्यार्थ मूर्तरूप धारण करके जीवन्त हो उठते हैं। रंगकर्म का प्राणतत्व है- अभिनय।

भरत मुनि ने नाटक खेलने के लिए नाट्यशाला, नाट्यमण्डप या प्रेक्षागृह का विधान किया है। इन तीनों का वर्णन तिलोयपण्णत्ति में भी उपलब्ध होता है। देवों के जिनालय में प्रेक्षागृह या नाट्यशाला विद्यमान होती है।[४] देवों के भवनों में भी नाटकगृह हैं।[५] देव लोग श्रेष्ठ अप्सराओं सहित जिनेन्द्र देव की पूजा के अन्त में बहुत प्रकार के रस, भाव एवं अभिनय से युक्त विविध प्रकार के नाटक करते हैं।[६] अन्यत्र यह भी वर्णित है कि नंदीश्वर द्वीप में पूजा के बाद चारों प्रकार के देव आनन्द के साथ नाट्याभिनय के प्रकारों से शोभित अनेक प्रकार के रस, भाव वाले जिनचरित्र सम्बन्धी नाटक करते हैं।[७] मनुष्य भी नाटक द्वारा मनोरंजन करते थे, इसीलिए चक्रवर्ती के (वैभव में) ३२००० नाट्यशालाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[८] कल्पवासी देवों में प्रत्येक इन्द्र की सात प्रकार की सेना होती है, सेना के प्रत्येक प्रकार में सात कक्ष होते हैं तथा प्रत्येक कक्ष में देव, राजा, राजाधिराज, विद्याधर, नारायण, चक्रवर्ती आदि पुण्यशाली जीव एवं इन्द्र के चरित्र का अभिनय करके अपना मनोरंजन करते हैं।[९] वे अभिनय इस प्रकार हैं-

कंदप्पराजराजाधिराजविज्जाहराण चरियाणिं।
णच्चंति णट्ठयसुरा णिच्चं पढमाए कक्खाए।।

अर्थात् प्रथम कक्षा के नर्तक देव नित्य ही कन्दर्प, राजा, राजाधिराज और विद्याधरों के चरित्रों का अभिनय करते हैं।

पुढवीसाणं चरियं अर्द्धमहादिमंडलीयाणं।
बिदियाए कक्खाए णच्चंते णच्चणा देवा।।

अर्थात् द्वितीय कक्षा के नर्तक देव अर्द्धमण्डलीक और महामण्डलीक पृथ्वीपालकों के चरित्र का अभिनय करते हैं।

बलदेवाण हरीणं पडिसत्तूणं विचित्तचरिदाणिं।
तदियाए कक्खाए वररसभावेहिं णच्चंति।।

Scanned with OKEN Scanner

अर्थात् तृतीय कक्षा के नर्तक देव उत्तम रस एवं भावों के साथ बलदेव, नारायण और प्रतिनारायणों के विचित्र चरित्रों का अभिनय करते हैं।

चोद्दसरयणवईणं णवणिहिसामीण चक्कवट्टीणं।
अच्छरियचरित्ताणिं णच्चंति चउत्थकक्खाए।।

अर्थात् चतुर्थ कक्षा के नर्तक देव चौदह रत्नों के अधिपति और नवनिधियों के स्वामी ऐसे चक्रवर्तियों के आश्चर्यजनक चरित्रों का अभिनय करते हैं।

सव्वाण सुरिंदाणं सलोयपालाण चारूचरियाई।
ते पंचमकक्खाए णच्चंति विचित्तभंगीहिं।।

अर्थात् पंचम कक्षा के नर्तक देव लोकपालों सहित समस्त इन्द्रों के सुन्दर चरित्रों का विचित्र प्रकारों से अभिनय करते हैं।

गणहरदेवादीणं विमलमुणिंदाण विविहरिद्धीणं।
चरियाइं विचित्ताइं णच्चंते छट्ठकक्खाए।।

अर्थात् छठी कक्षा के नर्तक देव विविध ऋद्धियों के धारक गणधर देवादि निर्मल मुनीन्द्रों के विचित्र चरित्रों का अभिनय करते हैं।

चोत्तीसाइसयाणं बहुविहकल्लाणपाडिहेराणं।
जिणणाहाण चरित्तं सत्तमकक्खाए णच्चंति।।

अर्थात् सप्तम कक्षा के नर्तक देव चौंतीस अतिशयों से संयुक्त और बहुत प्रकार के मंगलमय प्रतिहार्यों से युक्त तीर्थंकरों (जिननाथों) के चरित्र का अभिनय करते हैं।

कल्पवासी देव भी स्वर्ग में जन्म के बाद पूजा और अभिषेक करते हैं, तदनन्तर वे देव हर्षपूर्वक विचित्र शैलियों से नाना रसों एवं भावों से युक्त अनेक प्रकार के दिव्य नाटक करते हैं।[१०] तीर्थंकरों के समवसरण में दो-दो नाट्यशालाएँ होती हैं। वे नाट्यशालाएँ उत्तम स्वर्ण एवं रत्नों से निर्मित होती हैं। नाट्यशालाओं की ऊँचाई बारह से गुणित अपने-अपने तीर्थंकरों के शरीर की ऊँचाई के समान होती हैं। प्रत्येक नाट्यशाला में ३२ रंगभूमियाँ और प्रत्येक रंगभूमि में बत्तीस भवनवासी-कन्याएँ अभिनयपूर्वक नृत्य करती हुई नाना प्रकार के अर्थों से युक्त दिव्य गीतों द्वारा तीर्थंकरों के विजय के गीत गाती हैं और पुष्पांजलियों का क्षेपण करती हैं।[११] जैसे गाथाओं में कहा भी है-

Scanned with OKEN Scanner

आदिमखिदीसु पुह पुह बीहीणं दोसु दोसु पासेसुं।
दोद्दो णट्टयसाला वरकंचणरयणणिम्मविदा।।

अर्थात् प्रथम प्रविथियों में पृथक्-पृथक् वीथियों के दोनों पार्श्वभागों में उत्तम स्वर्ण एवं रत्नों से निर्मित दो-दो नाट्यशालाएँ होती हैं।

णट्टयसालाण पुढं उस्सेहो णियजिणंगउदएहिं।
बारसहदेहिं सरिसो णट्ठा दीहत्तवासउवएसा।।

अर्थात् नाट्यशालाओं की ऊंचाई बारह से गुणित अपने-अपने तीर्थंकरों के शरीर की ऊंचाई के सदृश होती हैं तथा इनकी लम्बाई और विस्तार का उपदेश नष्ट हो गया है।

एक्केक्काए णट्टयसालाए चउहदट्ठरंगाणि।
एक्केक्कस्सिं रंगे भावणकण्णाउ बत्तीसं।।
गायंति जिणिंदाणं विजयं विविहत्थदिव्वगीदेहिं।
अभिणइय णच्चणीओ खिवंति कुसुमंजलिं ताओ।।

अर्थात् प्रत्येक नाट्यशाला में चार से गुणित आठ अर्थात् बत्तीस रंगभूमियां और प्रत्येक रंगभूमि में बत्तीस भवनवासी कन्याएँ अभिनयपूर्वक नृत्य करती हुईं नाना प्रकार के अर्थों से युक्त दिव्य गीतों द्वारा तीर्थंकरों की विजय के गीत गाती हैं और पुष्पांजलियों का क्षेपण करती हैं।

एक्केक्काए णट्टयसालाए दोण्णि दोण्णि धूववडा।
णाणासुगंधधूवप्पसरेणं वासियदिगंता।।

नाट्याभिनय की सैद्धांतिक मीमांसा :

भारतीय नाट्य-शास्त्रीय विचारधारा में अभिनय को अत्यन्त व्यापक अर्थों में ग्रहण किया गया है। अत: अभिनय के अन्तर्गत अधिकांशत: रंगकर्म के सभी तत्त्व समाहित हो जाते हैं।

नाट्य प्रयोग का प्राणतत्त्व ही 'अभिनय' है। सभी भावों-विचारों, कथावस्तु इत्यादि सभी नाटकीय तत्त्वों को रूपायित करने का साधन अभिनय ही है। जब तक अभिनय नहीं किया जाता, तब तक प्रस्तोतव्य कोई वस्तु नाट्यरूपता धारण नहीं करती। अभिनय से ही नाट्य बनता है, जो उसी माध्यम से रसनीयता धारण करता है। अभिनय ही प्राण रस का उन्मेष करता है। भरत ने नाट्य के रस प्रयोगात्मक नाट्य

Scanned with OKEN Scanner

विधान को 'अभिनय ' यह शास्त्रीय नाम दिया है। भरत ने नाट्यशास्त्र में अभिनय का विवेचन बड़े विस्तार से किया है। 'अभिनय' शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहते हैं 'णीञ्' धातु से 'अभि' उपसर्ग लगाने से 'अभिनय' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है कि नाटक के प्रयोग द्वारा मुख्यार्थ (कथानक) को श्रोता या सहृदय सामाजिक के हृदय तक पहुँचाना और विभावन या रसास्वादन कराना है।[१२] इस शब्द की व्युत्पत्ति दूसरे प्रकार से अभि पूर्वक 'नी' धातु से हुई है, जिसमें संज्ञार्थक 'अच्' प्रत्यय जोड़ा गया है। इस प्रकार इसका शाब्दिक अर्थ होता है- अभिमुख या सामने लाना।[१३] अन्य प्रकार से इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि 'अभिनय' शास्त्र की शब्दावली में प्रदर्शन का एक विशेष साधन है, जिसके द्वारा प्रदर्शनीय वस्तु को दर्शक के सम्मुख प्रत्यक्षरूप से उपस्थित किया जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि अपने एकमात्र साधन अभिनय के द्वारा लोक स्वभाव का दर्शन कराना नाट्य फल है। वे कहते हैं कि लोक स्वभाव का दर्शन अन्य किसी प्रकार से होने पर वह नाट्य नहीं होता है और इसलिए भरतमुनि ने कहा है- 'अनेकभेदबहुलं नाट्यस्मिन् (अभिनये) प्रतिष्ठितम्।'[१४] अभिनय इसलिए कहा गया है, क्योंकि यह अनेक अर्थों को नाट्य प्रयोग द्वारा अपने शाखा, अंग तथा उपांग से युक्त होकर बतलाता है। वस्तुत: 'नाट्य शास्त्र' में अभिनय शब्द बहुत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसमें नाटक के सभी तत्त्वों का अनायास ही समावेश हो जाता है। नाटक की नाटकीयता तभी सार्थक है जब यह रंगमंच के योग्य हो यानी कि वहाँ अभिनय के पात्र रामादि के समान ही सहृदय सामाजिक उनको देखकर उनकी कार्य स्थिति को अपनी स्थिति में मानने लगता है और सहृदय सामाजिक का साधारणीकरण हो जाता है, वहाँ वह वेद्यान्तर-स्पर्शशून्य बन जाता है। भरतानुसार अभिनय की परिभाषा इस प्रकार है -

विभावयति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगत:।
शाखाङ्गोपाङ्गा संयुक्तास्तस्मादभिनय: स्मृत:।।[१५]

अभिनय इसलिए कहा जाता है कि इसमें शाखा, अंग और उपाङ्गों के सहित प्रयोग के द्वारा विभिन्न अर्थों को प्रतीति गोचर बनाते हैं। तात्पर्य यह है कि नाट्य शास्त्रीय परम्परा में जब अभिनय शब्द का व्यवहार किया जाता है तो निश्चय ही कुछ भी छूटता नहीं है। सभी तत्त्वों का इसमें समावेश हो जाता है। जब तक अभिनय नहीं किया जाता तब तक प्रस्तोतव्य कोई वस्तु नाट्य रूपता धारण नहीं करती है। काव्य अभिनीत होने पर नाट्य बनता है और नाट्य में रस प्रधान होता है। वस्तुत: नाट्य और रस दोनों क्रमश: नाट्य की रसाभिमुखी विकासशील प्रक्रियाएं हैं।[१६] अत: अभिनय, नाट्य और रस- ये तीनों अर्थ-प्रवाह ही नहीं प्रयोग की दृष्टि से भी एक

Scanned with OKEN Scanner

माला में एक सूत्र में पिरोये हुए सुरक्षित पुष्प (माला) की तरह हैं। अभिनय काव्य के अर्थों को दृश्य बनाता है।[१७] उन्हें रूपान्तरित करने का कौशल है।[१८] सामाजिकों की रसानुभूति का साधन है। साहित्य दर्पणकार कहते हैं- अभिनय का अभिप्राय अवस्थाओं के अनुकार अथवा अनुकरण है। यह चार प्रकार से हुआ करता है, जिसमें नट द्वारा अपने अंग, वाणी आदि के विविध व्यापारों की सहायता से सम्पादित महापुरुषों की अवस्थाओं का अनुकरण करता है, वे इस प्रकार हैं- आङ्गिक, सात्त्विक, वाचिक और आहार्य।[१९]

अभिनय आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य अनुकरण की वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से नट अभ्यास के बल पर एक चरित्र विशेष को दर्शकों और समाज विशेष के समक्ष यथार्थानुभव के रूप में प्रस्तुत करता है। अभिनय अर्थात् चरित्र के अनुकरण की दक्षता के कारण ही अभिनेता 'स्व और पर' की भावना से रहित होकर सर्वग्राह्य हो जाता है। अभिनय के माध्यम से नेता जिन चरित्रों का अनुकरण करता है वह पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा कविकल्पना प्रसूत कोई भी हो सकता है, किन्तु साधारणीकरण के कारण प्रत्येक दर्शक या श्रोता उससे साम्य स्थापित करता है। नाटक में 'वाचिक' अभिनय के द्वारा नाटक के पात्र अनुकार्य के कथोपकथन का अनुकरण कर उसके चरित्र को चरितार्थ करते हैं, जैसे पुरुष एवं स्त्री पात्रों के अभिनय में कथनों का नाटक के पात्र द्वारा अनुकरण करना 'वाचिक अभिनय' होता है। इस तरह से शारीरिक चाल-चलन का अभिनय आंगिक कहलाता है। पात्रों के मनोभाव के स्वरूप का अभिनय सात्त्विक अभिनय तथा अनुकार्य के वेशभूषा का अनुकरण कर उसके समस्त चरित्र को यथावत् नाट्य में प्रस्तुत करना ही अभिनय है, जिससे दर्शक और पाठक दत्तचित्त होकर नाट्य रस की चर्वणा करते हैं।

अभिनय रंगमंच पर विभिन्न भावों, आकर्षक मुद्राओं, सुस्वर और तालवृन्द छन्द समन्वित स्थिति में तन्मय होकर प्रदर्शन करना चाहिए। ऐसा अभिनय हो, जिससे सारी सभा रस विभोर हो जाए। तात्पर्य यह है कि वाचिक अभिनय शिथिल हो तो अन्य अभिनय के प्रयोग सुरुचिपूर्ण नहीं बन सकते हैं। उपर्युक्त स्थान पर यति काकु से बोलना वाचिक अभिनय का प्रयोग मुख्य सम्बन्ध शरीर से न होकर वाणी के विभिन्न प्रयोगों से है। सभी अभिनयों का प्रयोग शास्त्रविधि के अनुसार करना चाहिए तभी नाटक की सफलता हो सकती है।

जैन परम्परा में नाटक के चार प्रकार बताये गये हैं- अंचित, रिभित, आरभड और भसोल। नाट्यविधि में अभिनय का होना आवश्यक है, इसलिए चार प्रकार के

अभिनय का भी उल्लेख प्राप्त होता है- दार्ष्टान्तिक, पाण्डुसुत, सामंतोपपातनिक और लोकमध्यावसित।[२०] इनके अतिरिक्त डॉ. जगदीश जैन ने आगम साहित्य में वर्णित नाट्य-अभिनय की ३२ विधियों का उल्लेख भी किया है। वे इस प्रकार हैं:-

१.स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण के प्रतीकों का प्रतिनिधित्व वाले दिव्य अभिनय। प्रस्तुत अभिनय में आंगिक अभिनय द्वारा नाटक करने वाले स्वस्तिक आदि आठ मंगलों का आकार बनाकर खड़े हो जाते हैं और फिर हस्त आदि द्वारा उस आकार का प्रदर्शन करते हैं। ये लोग वाचिक अभिनय द्वारा उस मंगल शब्द का उच्चारण करते हैं, जिससे कि दर्शकों के मन में मंगल के प्रति रति का भाव उत्पन्न होता है।

२.आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, सौवस्तिक, पुष्य, माणवक, वर्धमानक (कंधे पर बैठे हुए पुरुष का अभिनय) मत्स्यंड, मकरंड, जार, भार, पुष्पावलि, पद्मपत्रा, सागरतरंग, वसंतलता और पद्मलता के चित्रों का अभिनय।

३. ईहामृग, वृषभ, नरतुरग, मगर, विहग, व्याल, किंन्नर, रूरू, शरभ, चमर, कुंजर, वनलता और के चित्रों का अभिनय।

४. एकतो वक्र, द्विधवक्र, एकतश्चक्रवाल, द्विधचक्रवाल, चक्रार्ध चक्रवाल के चित्रों का प्रदर्शन।

५. चन्द्रावलिका, सूर्यावलिका, वलिया-वलिका, हंसावलिका, एकावलिका, तारावलिका, मुक्तावलिका, कनकावलिका और रत्नावलिका प्रविभक्तियों का प्रदर्शन।

६. चन्द्रोद्गम और सूर्योद्गम दर्शन का अभिनय।

७. चन्द्रागम और सूर्यागमदर्शन का अभिनय।

८. चन्द्रावरण और सूर्यावरण के दर्शन का अभिनय।

९. चन्द्रास्त और सूर्यास्त दर्शन का अभिनय।

१०. चन्द्रमंडल, सिंहमंडल, नागमंडल, यक्षमंडल, भूतमंडल, राक्षसमंडल, महोरगमंडल और गंधर्वमंडल प्रविभक्तियों के अभिनय का प्रदर्शन का अभिनय।

११. ऋषभमंडल, सिंहमंडल, हयविलंबित, गजविलंबित, हयविलसित, गजविलसित, मत्तहयविलंबित, मत्तगजविलंबित और द्रुतविलंबित विभक्तियों के अभिनय का प्रदर्शन।

Scanned with OKEN Scanner

१२. सागर और नागर प्रविभक्तियों के अभिनय।

१३. नंदा (शाश्वत पुष्पकरिणी) और चम्पा प्रविभक्तियों के अभिनय का प्रदर्शन।

१४-१९. क वर्ग से लेकर प वर्ग तक की प्रविभक्तियों के प्रदर्शन।

जैसे- ब्राह्मीलिपि को + ।

२०. अशोकपल्लव, आम्रपल्लव, जम्बूपल्लव और कोशंबपल्लव प्रविभक्तियों के अभिनय का प्रदर्शन।

२१. पद्मलता, नागलता, अशोकलता, आम्रलता, चंपकलता, वनलता, वासंतीलता, कुन्दलता, अतिमुक्तकलता और श्यामलता प्रविभक्तियों के अभिनय का प्रदर्शन।

२२. द्रुत (लय और चाल) नाट्य का अभिनय।

२३. विलंबित नाट्य के अभिनय का प्रदर्शन।

२४. द्रुतविलंबित नाट्य के अभिनय का प्रदर्शन।

२५. अंचित नाट्य (मस्तक सम्बन्धी और पाद संबंधी अभिनय) के अभिनय का प्रदर्शन।

२६. रिभित नाट्य के अभिनय का प्रदर्शन।

२७. अंचितरिभित नाट्य के अभिनय का प्रदर्शन।

२८. आरभट नाट्य के अभिनय का प्रदर्शन।

२९. भसोल नाट्यविधि में भ्रमर के अभिनय का प्रदर्शन।

३०. आरभटभसोल नाट्यविधि के अभिनय का प्रदर्शन।

३१. उत्पाद, निपात, प्रवृत्त, संकुचित, प्रसारित, रइयारइय अथवा रियारिय, भ्रान्त, सम्भ्रान्त क्रियाओं की नाट्यविधि के अभिनय का प्रदर्शन।

३२. इस अंतिम नाट्यविधि में नट और नटी एक पंक्ति में खड़े होकर महावीर के पूर्वभव, उनका च्यवन, गर्भसंहरण, जन्म, अभिषेक, बालक्रीड़ा, यौवनावस्था, कामभोगलीला, निष्क्रमण, तपश्चरण, ज्ञान की प्राप्ति, तीर्थप्रवर्तन और परिनिर्वाण सम्बन्धी अभिनयों का प्रदर्शन करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

उपरोक्त वर्णित नाट्य अभिनय विधियों में से पहली दो एवं अंतिम का उल्लेख तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में उपलब्ध माना जा सकता है। क्योंकि प्रथम अभिनय विधि में आंगिक अभिनय द्वारा नाटक करने वाले स्वस्तिक आदि आठ मंगलों का आकार बनाकर खड़े हो जाते हैं और फिर हस्त आदि द्वारा उस आकार का प्रदर्शन करते हैं। ये लोग वाचिक अभिनय द्वारा उस मंगल शब्द का उच्चारण करते हैं। इस विधि का अनुकरण देवों द्वारा नृत्य, संगीत और नाटक के प्रसंगों में तिलोयपण्णत्ति में उल्लिखित है। अंतिम बत्तीसवीं अभिनय विधि का उल्लेख भी तिलोयपण्णत्ति में उपलब्ध होता है और मध्य की शेष अभिनय विधियों का प्राय: अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

यह अत्यन्त ही स्पष्ट है कि जैन नाट्यपरम्परा तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ की उपजीव्य रही है, क्योंकि इस जैन नाट्य-परम्परा का विकास आगे हमें पुराणों में देखने को मिलता है। जैन परम्परा में नाटक की उत्पत्ति दैविक है, किन्तु बाद में चलकर तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के अभिनय से उसका विकास हुआ। जिनसेन कृत आदिपुराण में उल्लेख है कि भगवान् ऋषभदेव के जन्मकल्याणक में इन्द्र अनेक देवताओं के साथ आया और भगवान् को पाण्डुकशिला पर स्नान कराने के बाद अयोध्या नगरी लौटा। तदनन्तर उसने नगरवासियों का उल्लास-आनंद देखकर "आनंद" नाम के नाटक में अपना मन लगाया।[२१] सर्वप्रथम इन्द्र ने नृत्य किया, जिसमें वह स्वयं नृत्यकार होता है। तीन लोकों में फैली हुई कुलाचलों सहित पृथ्वी की रंगभूमि थी, नाभिराय आदि उत्तम पुरुष दर्शक, ऋषभदेव आराध्य, धर्मार्थकाम तीन पुरुषार्थों की सिद्धि तथा परमानंद मोक्ष की प्राप्ति होना ही उसका फल थे।[२२]

नाट्याभिनय में पहले इन्द्र ने गर्भावतार सम्बन्धी, फिर जन्माभिषेक सम्बन्धी और पश्चात् भगवान् के पूर्वभव के महाबल आदि दशावतारों को लेकर नाटक किये। नाटक के प्रारम्भ में मंगलाचरण, फिर पूर्वरंग, अनन्तर ताण्डव नृत्य, नान्दी मंगल करने के बाद रंगभूमि में प्रवेश किया।[२३] इन्द्र के साथ अनेक देवियाँ भी नृत्य करती हैं।[२४] ऐसा प्रतीत होता है कि इन सभी अभिनयों का सूत्रधार इन्द्र हो,[२५] क्योंकि यह भी वर्णन मिलता है कि इन्द्र ने आनंद नामक नाटक उत्पन्न किया और स्वयं ही देवताओं के साथ अभिनीत किया।[२६]

जैन ग्रन्थों में नाटक खेलने, अभिनय करने आदि के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं- रायपसेणियसुत्त[२७] में सूर्याभदेव अधिकार में उल्लेख है कि देव-देवियों ने महावीर स्वामी से ३२ प्रकार के नाटक खेलने की तीन बार अनुमति मांगी, किन्तु उत्तर नहीं मिला तब उन्होंने महावीर के स्वर्ग च्यवन, गर्भ, जन्म, अभिषेक, बालक्रीड़ा,

Scanned with OKEN Scanner

यौवन, निष्क्रमण, तपश्चर्या, केवलज्ञान, तीर्थप्रवर्तन, निर्वाण आदि प्रसंगों के बजाकर, संगीत सुनाकर, नृत्य और अभिनय कर मूक अभिनय जैसा नाटक किया। पुष्पिका उपांग[२८] में इन्द्र ने महावीर के समक्ष सूर्याभदेव के द्वारा नाट्यविधि का प्ररूपण कराया है। वहाँ सूर्य, शुक्र आदि दस व्यक्तियों की ओर से अभिनीत नाटक का उल्लेख मिलता है। पिण्डनिर्युक्ति[२९] में रट्टवाल नाटक का उल्लेख आया है। इसमें भरतचक्रवर्ती का जीवनवृत्त आषाढमुनि ने अभिनीत किया है। इसे देख राजकुमार आदि संसार से उद्विग्न हो गये। उत्तराध्ययन की वृत्ति में नेमिचन्द्र ने मधुकरीगीत और योयामणि इन दो नाटकों का उल्लेख किया है। प्रबंधकोश में कहा गया है कि बप्पभट्टि के गुरुभाई नन्नसूरि ने वृषभध्वजचरित नाटक आम राजा (कन्नौज नरेश) के दरबार में अभिनीत किया था। प्राचीन जैन नाटक कृतियों में शीलांकाचार्य के 'चउपन्नपुरिसचरियं' में विबुधनंद नाटक उपलब्ध होता है। वर्धमानसूरि के मनोरमाचरित्र की प्रशस्ति (वि.सं. ११४०) में उल्लेख है कि बुद्धिसागरसूरि ने कोई नाटक लिखा था।

नाट्याभिनय की परम्परा आज भी पंचकल्याणकों के अवसर पर देखने में मिलती है। जैसे इन्द्रादि देवता गाजे-बाजे सहित इस भूतल पर आते थे और कल्याणक मनाकर एवं नृत्य कर चले जाते थे, वैसे ही साधारण जन भी समय-समय पर मनोरंजनार्थ कल्याणकों को मनाते थे और इन्द्र जैसा ही अभिनयादि किया करते थे। शनैः-शनैः इसी परम्परा ने आधुनिक नाटक का रूप ले लिया। आज भी जैन परम्परा में पंचकल्याणक नाटक एवं नृत्य आदि मंचन किये जाते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नाटक और अभिनय दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि नाटक में अभिनय के बिना कुछ भी नहीं है। नाट्य संदर्भों के बीज तिलोयपण्णत्ति में अंकित हैं, जिनका अनुकरण जैन परम्परा के पुराण ग्रन्थों में किया गया है। तिलोयपण्णत्ति ज्ञान-विज्ञान का अक्षय-भण्डार है। यद्यपि यह तीन लोकों का भौगोलिक वर्णन तो करता ही है, साथ ही ऐतिहासिक, ललितकला और वास्तुविद्या का वर्णन भी करता है। अतएव यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में चाहे ऐतिहासिक हो, संगीत एवं वाद्य हो, नाट्यादि कलापरक हो और चाहे स्थापत्य कला आदि विविध विषयों में हो, तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ के इन अभूतपूर्व योगदानों को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची-

१. अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए।- ग्रन्थ के अंतिम गाथा। -तिलोयपण्णत्ति (भाग- १ एवं २), आचार्य यतिवृषभ, सम्पादक- प्रो.आदिनाथ नेमिनाथ

धौवन, निष्क्रमण, तपश्चर्या, केवलज्ञान, तीर्थप्रवर्तन, निर्वाण आदि प्रसंगों के बाजे बजाकर, संगीत सुनाकर, नृत्य और अभिनय कर मूक अभिनय जैसा नाटक किया। पुष्पिका उपांग[१०] में इन्द्र ने महावीर के समक्ष सूर्याभदेव के द्वारा नाट्यविधि का प्ररूपण कराया है। वहाँ सूर्य, शुक्र आदि दस व्यक्तियों की ओर से अभिनीत नाटक का उल्लेख मिलता है। पिण्डनिर्युक्ति[११] में रट्ठवाल नाटक का उल्लेख आया है। इसमें भरतचक्रवर्ती का जीवनवृत्त आषाढमुनि ने अभिनीत किया है। इसे देख राजा-राजकुमार आदि संसार से उद्विग्न हो गये। उत्तराध्ययन की वृत्ति में नेमिचन्द्र ने मधुकरीगीत और घोषामणि इन दो नाटकों का उल्लेख किया है। प्रबंधकोश में कहा गया है कि बप्पभट्टि के गुरुभाई नन्नसूरि ने वृषभध्वजचरित नाटक आम राजा (कन्नौज नरेश) के दरबार में अभिनीत किया था। प्राचीन जैन नाटक कृतियों में शीलांकाचार्य के 'चउपन्नपुरिसचरियं' में विवुधनंद नाटक उपलब्ध होता है। वर्धमानसूरि के मनोरमाचरित्र की प्रशस्ति (वि.सं. ११४०) में उल्लेख है कि बुद्धिसागरसूरि ने कोई नाटक लिखा था।

नाट्याभिनय की परम्परा आज भी पंचकल्याणकों के अवसर पर देखने में मिलती है। जैसे इन्द्रादि देवता गाजे-बाजे सहित इस भूतल पर आते थे और कल्याणक मनाकर एवं नृत्य कर चले जाते थे, वैसे ही साधारण जन भी समय-समय पर मनोरंजनार्थ कल्याणकों को मनाते थे और इन्द्र जैसा ही अभिनयादि किया करते थे। शनैः-शनैः इसी परम्परा ने आधुनिक नाटक का रूप ले लिया। आज भी जैन परम्परा में पंचकल्याणक नाटक एवं नृत्य आदि मंचन किये जाते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नाटक और अभिनय दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि नाटक में अभिनय के बिना कुछ भी नहीं है। नाट्य संदर्भों के बीज तिलोयपण्णत्ति में अंकित हैं, जिनका अनुकरण जैन परम्परा के पुराण ग्रन्थों में किया गया है। तिलोयपण्णत्ति ज्ञान-विज्ञान का अक्षय-भण्डार है। यद्यपि यह तीन लोकों का भौगोलिक वर्णन तो करता ही है, साथ ही ऐतिहासिक, ललितकला और वास्तुविद्या का वर्णन भी करता है। अतएव यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में चाहे ऐतिहासिक हो, संगीत एवं वाद्य हो, नाट्यादि कलापरक हो और चाहे स्थापत्य कला आदि विविध विषयों में हो, तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ के इन अभूतपूर्व योगदानों को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची-

१. अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए।- ग्रन्थ के अंतिम गाथा। -तिलोयपण्णत्ति (भाग- १ एवं २), आचार्य यतिवृषभ, सम्पादक- प्रो.आदिनाथ नेमिनाथ

उपाध्ये एवं प्रो. हीरालाल जैन, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, १९५१, १९५६ई.

२. तिलोयपण्णत्ति का सांस्कृतिक मूल्यांकन, लेखक- डॉ. धर्मेन्द्र जैन, प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वासोकुण्ड, मुजफ्फरपुर (बिहार), २०१०ई., पृष्ठ-२४७

३. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, (१/१५) सम्पा. बाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, २००२ ई.

४. वंदणभिसेयणच्चणसंगीआलोयमंडवेहिं जुदा। कीडणगुणणगिहेहिं विसालवरपट्टसालेहिं।।

-तिलोयपण्णत्ति, गाथा ३/४६

५. सामण्ण-चेत्त-कदली-गब्भ-लदा-णड-आसण-गिहाओ।

गेहा होंति विचित्ता, वेंतर-णयरेसु रम्मयरा-वही, गाथा, ४/३३-३४

६. पूजाए अवसाणे कुव्वंते णाडयाइ विविहाइं।

पवरच्छरापजुत्ता-बहुरस-भावाभिणेयाइं।।-वही, गाथा, ३/ २२७

७. जिणचरियणालयं ते चउव्विहाभिणयभंगियोहिल्लं।

आणंदेणं देवा बहुरसभावं पकुव्वंति।।-वही, गाथा, ५/ ११५

८. यव्वाण मउडबद्धा, बत्तीस यहस्सयाणि पत्तेक्कं।

तेत्तिय-मेत्ता णट्ठयसाला संगीद-सालाओ।।-वही, गाथा, ४/ १४०३

९. तिलोयपण्णत्ति, गाथा, ८/२६० से २६६

१०. तत्तो हरिसेण सुरा, णाणाविह णाडयाइं दिव्वाइं।

बहु-रस-भाव-जुदाइं, णच्चंति विचित्तभंगीहिं।।- वही, गाथा, ८/६१०

११. तिलोयपण्णत्ति, गाथा, ४/७५७ से ७६० तक

१२. णीञ प्रापणार्थको धातुः अभि+णी+अच्।- नाट्य दर्पणकार इसे इस प्रकार कहते 'सामाजिकानामभिमुख्येन साक्षात्कारेण नीयते प्राप्यते अर्थोऽनेनेत्यभिनयः।- नाट्य दर्पण (कारिका १५०, वृत्ति २२६), श्री रामचन्द्र गुणचन्द्र, सम्पादक- डॉ. दशरथ ओझा एवं डॉ. सत्यदेव चौधरी, भाष्यकार- आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि, तृतीय विवेक, स्वोपज्ञ विवरण, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, १९९०ई. पृष्ठ ३५१

१३. संस्कृत नाट्यकोश, रामसागर त्रिपाठी, द्वि. खण्ड, पृ. ३०

१४. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, (८/८) सम्पा. बाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, २००२ई.

१५. वही

१६. वही

१७. दृश्यं तत्राभिनेयम् ।-साहित्य दर्पण, श्री विश्वनाथ कविराज, पंचम संस्करण, कलिकाता नगर्य्याम मुद्रितम, १९००, ६/२७३, पृ २३७

१८. रूपं तत्राभिनये। -दशरूपक (१/८, पृ ७) महाकवि धनंजय, सम्पादक- डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९३ई.

१९. भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः। आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्य्यः सात्त्विकस्तथा।
-साहित्य दर्पण, ६/२७४ (ख), पृ २३७

२०. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, डॉ. जगदीश चन्द्र जैन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ई. पृष्ठ ३२३

२१. दृष्ट्वा प्रमुदितं तेषां स्वं प्रमोदं प्रकाशयन्।
संक्रन्दनो मनोवृत्तिमानन्दानन्दनाटके॥-चौदहवां पर्व, श्लोक संख्या-९५ -आदिपुराण, आचार्य जिनसेन,सम्पादक- डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९९८ई.

२२. विकृष्टः कुतपन्यासो मही सकुलभूधरा। रंगस्त्रिाभुवनाभोगः सहस्त्राक्षो महानटः॥
प्रेक्षका नाभिराजाद्याः समाराधयो जगद्गुरूः। पफलं त्रिवर्गसंभूतिः परमानन्द एव च॥- चौदहवां पर्व, श्लोक संख्या-१००-१०१, आदिपुराण, आचार्य जिनसेन, सम्पादक- डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९९८ई.

२३. आदिपुराण, आचार्य जिनसेन, चौदहवां पर्व, श्लोक संख्या-१०३-१०७

२४. वही, चौदहवां पर्व, श्लोक संख्या-१३२-१५३

२५. वही, चौदहवां पर्व, श्लोक संख्या-१५४

२६. पुरुदेवचम्पू, महाकवि अर्हद्दास, पंचम स्तबक, गद्य सं. ३४-४१, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९७२ई.

२७. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृष्ठ ५७२-५७३, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, १९९८ई.

२८. वही, पृष्ठ ५७२-५७३

२९. पिण्डनिर्युक्ति, गाथा, ४७४-४८०, प्रकाशन- जैनविश्वभारती, लाडनूं, २०००ई.

●●●●

Scanned with OKEN Scanner